ज्ञान और अनुभव का आलोक स्तम्भ है—उपाध्याय। उपाध्याय पद की गरिमा, उपयोगिता और उसकी विशिष्ट भूमिका का जैन परम्परागत एक सर्वांगीण अवलोकन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

☐ मुनिश्री रूपचन्द्र 'रजत'
[घोर तपस्वी]

जैन परम्परा में उपाध्याय पद

☐

क्रिया और ज्ञान

प्रत्येक धर्म का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। निर्वाण प्राप्त करना प्रत्येक धर्म-आराधक का लक्ष्य है। अतः कहा है—

निव्वाण सेट्ठा जह सव्वधम्मा[1]

सब धर्मों में निर्वाण को श्रेष्ठ माना है। निर्वाण प्राप्ति के साधन या मार्ग की मीमांसा विभिन्न धर्मों में विभिन्न प्रकार से की गई है। कोई धर्म सिर्फ ज्ञान से ही मुक्ति मानते हैं—"**सुयंसेयं**"[2] श्रुत ही श्रेय है, ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है, और कुछ धर्म वाले "**शीलं सेयं**" शील आचार ही श्रेय है। इस प्रकार एकांत ज्ञान और एकान्त आचार की प्ररूपणा करते हैं। किन्तु जैन धर्म, ज्ञान और क्रिया का रूप स्वीकार करता है। उसका स्पष्ट मत है—

आहंसु विज्जा चरणं पमोक्खो[3]

विद्या-ज्ञान और चरण-क्रिया के मिलन से ही मुक्ति होती है। न अकेला ज्ञान मुक्ति प्रदाता है और न अकेला आचार। जैन साधक ज्ञान की आराधना करता है और आचार की भी। आचार मूलक ज्ञान से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है। सद्ज्ञान पूर्वक किया गया आचरण ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। इस कारण जैन शास्त्रों में ज्ञान और आचार पर समान रूप से बल दिया गया है।

हाँ, यह बात जरूर ध्यान में रखने की है कि ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व आचार की शुद्धि अवश्य होनी चाहिए जिसका आचार शुद्ध होता है वही सद्ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मनुस्मृति में भी यही बात कही गई है—

आचाराद् विच्युतो विप्रः न वेद फलमश्नुते।

आचार से भ्रष्ट हुआ ब्राह्मण वेद ज्ञान का फल प्राप्त नहीं कर सकता। आचार्य भद्रबाहु से जब पूछा गया कि अंग शास्त्र जो कि ज्ञान के अक्षय भंडार हैं, उनका सार क्या है?

अंगाणं कि सारो ? [अंगों का सार क्या है ?]

आयारो ! [आचार, अंग का सार है]

दूसरा भाव है—ज्ञान का सार आचार है, इसलिए ज्ञान प्राप्ति वही कर सकता है जो सदाचारी होगा। भगवान महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन में कहा है—

अह पंचहिं ठाणेहिं जेहि सिक्खा न लब्भई।
थंभा कोहा पमाएणं रोगेणालस्स एण वा॥ —उत्त० ११।३

जो व्यक्ति क्रोधी, अहंकारी, प्रमादी, रोगी और आलसी है। वह ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है।

आचार की विशेषता रखने के लिए ही जैन संघ में पहले आचार्य और फिर उपाध्याय का स्थान बताया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है। आचार्य का अर्थ ही है आचार की शिक्षा देने वाले।[४] नव दीक्षित को पहले आचार-सम्पन्न करने के बाद फिर विशेष ज्ञानाभ्यास कराया जाता है इसलिए आचार्य के बाद उपाध्याय का स्थान सूचित किया गया है। आचार-शुद्धि के बाद ज्ञानाभ्यास कर साधक आध्यात्मिक वैभव की प्राप्ति कर लेता है। प्रस्तुत में हम उपाध्याय के अर्थ एवं गुणों पर विचार करते हैं।

उपाध्याय : शब्दार्थ

उपाध्याय का सीधा अर्थ शास्त्र-वाचना या सूत्र अध्ययन से है। उपाध्याय शब्द पर अनेक आचार्यों ने जो विचार-चिन्तन किया है, पहले हम उस पर विचार करेंगे।

भगवती सूत्र में पाँच परमेष्ठी को सर्वप्रथम नमस्कार किया है, वहां 'नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं' इन तीन के बाद 'नमो उवज्झायाणं' पद आया है। इसकी वृत्ति में आवश्यक निर्युक्ति की निम्नगाथा उल्लेखित करते हुए आचार्य ने कहा है—

बारसंगो जिणक्खाओ सज्झाओ कहिओ बुहे।
तं उवइस्संति जम्हा, उवज्झाया तेण वुच्चंति ॥[५]

जिन भगवान द्वारा प्ररूपित बारह अंगों का जो उपदेश करते हैं, उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। इसी गाथा पर टिप्पणी करते हुए आचार्य हरिभद्र ने लिखा है—

उपेत्य अधीयतेऽस्मात् साधवः सूत्रमित्युपाध्यायः।[६]

जिनके पास जाकर साधुजन अध्ययन करते हैं, उन्हें उपाध्याय कहते हैं। उपाध्याय में दो शब्द हैं—
उप + अध्याय। 'उप' का अर्थ है—समीप, नजदीक। अध्याय का अर्थ है—अध्ययन, पाठ।

जिनके पास में शास्त्र का स्वाध्याय व पठन किया जाता है वह उपाध्याय है। इसीलिए आचार्य शीलांक ने उपाध्याय को अध्यापक भी बताया है।

'उपाध्याय अध्यापकः' —आचारांग शीलांकवृति सूत्र २७६

दिगम्बर साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ भगवती आराधना की विजयोदया टीका में कहा है—

रत्नत्रयेषूद्यता जिनागमार्थ सम्यगुपदिशंति ये ते उपाध्यायाः।

—म० आ० वि० टीका ४६

—ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना में स्वयं निपुण होकर अन्यों को जिनागम का अध्ययन कराने वाले उपाध्याय कहे जाते हैं।

एक प्राचीन आचार्य ने उपाध्याय (उवज्झाय) शब्द की निर्युक्ति करते हुए एक नया ही अर्थ बताया है।

उ त्ति उवगरण 'वे' ति वेयज्झाणस्स होइ निद्देसे।
एएण होइ उज्झा एसो अण्णो वि पज्जाओ ॥[७]

'उ' का अर्थ है—उपयोगपूर्वक।
'व' का अर्थ है—ध्यान युक्त होना।
—अर्थात् श्रुत सागर के अवगाहन में सदा उपयोगपूर्वक ध्यान करने वाले 'उज्झा' (उवज्झय) कहलाते हैं।

इस प्रकार अनेक आचार्यों ने उपाध्याय शब्द पर गम्भीर चिन्तन कर अर्थ व्याकृत किया है।

योग्यता व गुण

यह तो हुआ उपाध्याय शब्द का निर्वचन, अर्थ। अब हम उसकी योग्यता व गुणों पर भी विचार करते हैं।

शास्त्र में आचार्य के छत्तीस गुण और उपाध्याय के २५ गुण बताए हैं। उपाध्याय उन गुणों से युक्त होना चाहिए। उपाध्याय पद पर कौन आरूढ़ हो सकता है, उसकी कम से कम क्या योग्यता होनी चाहिए? यह भी एक प्रश्न है। क्योंकि किसी भी पद पर आसीन करने से पहले उस व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं शैक्षिक योग्यता को

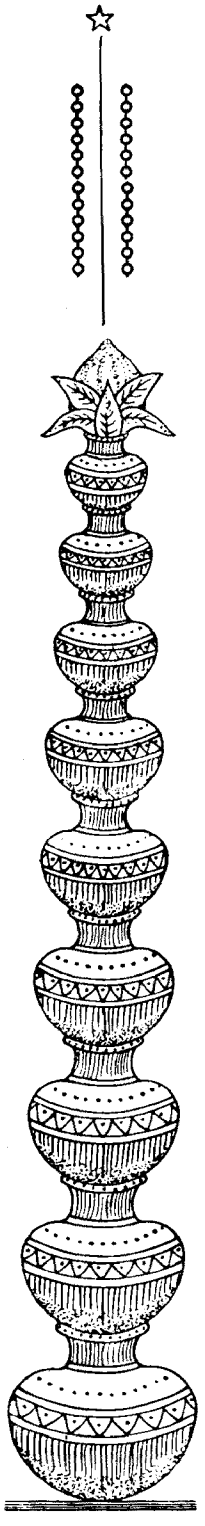

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कसौटी पर कसा जाता है। यदि अयोग्य व्यक्ति किसी पद पर आसीन हो जाता है तो वह अपना तो गौरव घटायेगा ही, किन्तु उस पद का और उस संघ या शासन का भी गौरव मलिन कर देगा। इसलिए जैन मनीषियों ने उपाध्याय पद की योग्यता पर विचार करते हुए कहा है।

कम से कम तीन वर्ष का दीक्षित हो, आचार कल्प (आचारांग व निशीथ) का ज्ञाता हो, आचार में कुशल तथा स्व-समय पर-समय का वेत्ता हो, एवं व्यञ्जनजात (उपस्थ व काँख में रोम आये हुए) हो।[८]

दीक्षा और ज्ञान की यह न्यूनतम योग्यता जिस व्यक्ति में नहीं, वह उपाध्याय पद पर आरूढ़ नहीं हो सकता।

पच्चीस-गुण—

इसके बाद २५ गुणों से युक्त होना आवश्यक है। पच्चीस गुणों की गणना में दो प्रकार की पद्धति मिलती है। एक पद्धति में पचीस गुण इस प्रकार हैं—११ अंग, १२ उपांग, १ करणगुण १ चरण गुण सम्पन्न—=२५।[९]

दूसरी गणना के अनुसार २५ गुण निम्न हैं—

१२, द्वादशांगी का वेत्ता—आचारांग आदि १२ अंगों का पूरा रहस्यवेत्ता हो।

१३. करण गुण सम्पन्न—पिण्ड विशुद्धि=आदि के सत्तरकरण गुणों से युक्त हो।

१४. चरणगुण सम्पन्न—५ महाव्रत श्रमण धर्म आदि सत्तरचरण गुणों से सम्पन्न हो।

१५-२२, आठ प्रकार की प्रभावना के प्रभावक गुण से युक्त हो।

२३, मन योग को वश में करने वाले।

२४, वचन योग को वश में करने वाले।

२५, काययोग को वश में करने वाले।[१०]

बारह अंग

१. आचारांग	२. सूत्रकृतांग
३. स्थानांग	४. समवायांग
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति	६. ज्ञाता धर्मकथा
७. उपासक दशा	८. अन्तगड दशा
९. अणुत्तरोववाइय दशा	१०. प्रश्न व्याकरण
११. विपाकश्रुत	१२. दृष्टिवाद

उपाध्याय इन बारह अंगों का जानकार होना चाहिए।

करण-सत्तरी

१३—करण सत्तरी—करण का अर्थ है—आवश्यकता उपस्थित होने पर जिस आचार का पालन किया जाता हो वह आचार विषयक नियम। इसके सत्तर बोल निम्न हैं—

पिंड विसोही समिइ भावण पडिमा य इंदिय निरोहो,
पडिलेहण गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु।[११]

४ चार प्रकार की पिण्ड विशुद्धि—

(१) शुद्ध आहार, (२) शुद्ध पात्र, (३) शुद्ध वस्त्र, (४) शुद्ध शय्या। इनकी शुद्धि का विचार ४२ दोषों का वर्जन।

५-९, ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भांडमात्र निक्षेपणा समिति, उच्चार प्रस्रवण समिति। इन पाँच समिति का पालन करना।

१०-२१, अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अत्यत्व, अशौच, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म, लोक, बौधिदुर्लभ। इन बारह भावनाओं का अनुचिन्तन करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२-३३, बारह भिक्षु प्रतिमाएँ निम्न हैं[१२]—

१—मासिकी भिक्षु प्रतिमा
२—द्वि मासिकी भिक्षु प्रतिमा
इसी प्रकार सातवीं सप्त मासिकी भिक्षु प्रतिमा
८. प्रथमा सप्त रात्रि दिवा भिक्षु प्रतिमा
९. द्वितीया सप्त रात्रि दिवा भिक्षु प्रतिमा
१०. तृतीया सप्त रात्रि दिवा भिक्षु प्रतिमा
११. अहो रात्रि की भिक्षु प्रतिमा
१२. एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा

३४-५८, पचीस प्रकार की प्रति लेखना, ६ वस्त्र प्रतिलेखना, ६ अप्रमाद प्रतिलेखना, १३ प्रमाद प्रतिलेखना ये पच्चीस भेद प्रतिलेखना के हैं।[१३]

५९-६३, पाँच इन्द्रियों का निग्रह।

६४-६६, मन, वचन, काय गुप्ति।

६७-७०, द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार अभिग्रह करना। ये सत्तर भेद हैं करण गुण के जिसे 'करण सत्तरी' कहते हैं।

चरण-सत्तरी

चरण-सत्तरी के सत्तर बोल निम्न हैं—

वय समण धम्मं संजम वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
नाणाइतियं तव कोह निग्गहा इह चरणमेयं॥ —धर्मसंग्रह ३

चरण गुण का अर्थ है, निरन्तर प्रतिदिन और प्रति समय पालन करने योग्य गुण। साधु का सतत पालन करने वाला आचार है। इसके सत्तर भेद हैं—

१-५ अहिंसा आदि पाँच महाव्रत,

६-१५, दस प्रकार का श्रमण धर्म—

क्षमा, निर्लोभता, सरलता, मृदुता, लाघव, सत्य, संयम, त्याग, ब्रह्मचर्य श्रमण धर्म के ये दस प्रकार हैं।[१४]

१६-३२, सत्रह प्रकार का संयम इस प्रकार।[१५]

(१-५) पृथ्वी, अप, तेजस्, वायु, वनस्पतिकाय संयम
(६-९) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संयम
(१०) अजीवकाय संयम, वस्त्र-पात्र आदि निर्जीव वस्तुओं पर भी ममत्व न करना, उनका संग्रह न करना।
(११) प्रेक्षा-संयम—प्रत्येक वस्तु को अच्छी तरह देखे बिना काम में न लेना।
(१२) उपेक्षा-संयम—पाप कार्य करने वालों पर उपेक्षा भाव रखे, द्वेष न करे।
(१३) प्रमार्जना संयम—अन्धकार पूर्ण स्थान पर बिना पून्जे गति स्थिति न करना।
(१४) परिष्ठापना संयम—परठने योग्य वस्तु निर्दोष स्थान पर परठे।
(१५) मन संयम।
(१६) वचन संयम।
(१७) काय संयम।

३३-४२, दस प्रकार की वैयावृत्य करना।[१६] आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित, कुल, गण, संघ और साधर्मिक की सेवा करना।

४३-५१, ब्रह्मचर्य की नव गुप्तियों का पालन करना।[१७]

(१) शुद्ध स्थान सेवन (२) स्त्री-कथा वर्जन

(३) एकासन त्याग
(४) दर्शन-निषेध
(५) श्रवण-निषेध
(६) स्मरण-वर्जन
(७) सरस-आहार त्याग
(८) अति-आहार त्याग
(९) विभूषा-परित्याग

५२-५४, ज्ञान, दर्शन और चारित्र की शुद्ध आराधना करना।
५५-६६, बारह प्रकार के तप का आचरण करना।[१८]
६७-७०, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चार कषायों का निग्रह करना।
इस प्रकार चरण सत्तरी के ये ७० बोल हैं।

आठ प्रभावना—

उपाध्याय की उक्त विशेषताओं के साथ वे प्रभावशील भी होने चाहिए। आठ प्रकार की प्रभावना बताई गई है। उपाध्याय इनमें निपुण होना चाहिए। आठ प्रभावना निम्न हैं—[१९]

(१) प्रावचनी—जैन व जैनेतर शास्त्रों का विद्वान।
(२) धर्मकथी—चार प्रकार की धर्म कथाओं[२०] के द्वारा प्रभावशाली व्याख्यान देने वाले।
(३) वादी—वादी-प्रतिवादी, सभ्य, सभापति रूप चतुरंग सभा में सुपुष्ट तर्कों द्वारा स्वपक्ष-पर-पक्ष के मंडन-खंडन में सिद्धहस्त हों।
(४) नैमित्तिक—भूत, भविष्य एवं वर्तमान में होने वाले हानि-लाभ के जानकार हों।[२१]
(५) तपस्वी—विविध प्रकार की तपस्या करने वाले हों।
(६) विद्यावान—रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि चतुर्दश विद्याओं के ज्ञाता हों।
(७) सिद्ध—अंजन, पाद लेप आदि सिद्धियों के रहस्यवेत्ता हों।
(८) कवि—गद्य-पद्य, कथ्य और गेय, चार प्रकार के काव्यों[२२] की रचना करने वाले हों।

ये आठ प्रकार के प्रभावक उपाध्याय होते हैं।

२३-२५, मन, वचन एवं काय योग को सदा अपने वश में रखना।
इस प्रकार उपाध्याय में ये २५ गुण होने आवश्यक माने गये हैं।

उपाध्याय का महत्त्व

जैन आगमों के परिशीलन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि संघ में जो महत्त्व आचार्य का है, लगभग वही महत्त्व उपाध्याय को भी प्रदान किया गया है। उपाध्याय का पद संघ-व्यवस्था की दृष्टि से भले ही आचार्य के बाद का है, किन्तु इसका गौरव किसी प्रकार कम नहीं है। स्थानांग सूत्र में आचार्य और उपाध्याय के पाँच अतिशय बताये हैं। संघ में जो गौरव व सम्मान की व्यवस्था आचार्य की है उसी प्रकार उपाध्याय का भी वही सम्मान होता है। जैसे आचार्य उपाश्रय (स्थान) में प्रवेश करें तो उनके चरणों का प्रमार्जन (धूल-साफ) किया जाता है, इसी प्रकार उपाध्याय का भी करने का विधान है।[२३] इसी सूत्र में आचार्य-उपाध्याय के सात संग्रह स्थान भी बताये हैं, जिनमें गण में आज्ञा (आदेश), धारणा (निषेध) प्रवर्तन करने की जिम्मेदारी आचार्य उपाध्याय दोनों की बताई है।[२४]

उपाध्याय : भाषा वैज्ञानिक

वास्तव में आचार्य तो संघ का प्रशासन देखते हैं, जबकि उपाध्याय मुख्यतः श्रमण संघ की ज्ञान-विज्ञान की दिशा में अत्यधिक अग्रगामी होते हैं। श्रुत-ज्ञान का प्रसार करना और विशुद्ध रूप से उस ज्ञान धारा को सदा प्रवाहित रखने की जिम्मेदारी उपाध्याय की मानी गयी है।

आचार्य की आठ प्रकार की गणि सम्पदा का वर्णन शास्त्र में आया है। वहाँ बताया गया है कि आगमों की अर्थ-वाचना आचार्य देते हैं।[२५] आचार्य शिष्यों को अर्थ का रहस्य तो समझा देते हैं किन्तु सूत्र-वाचना का कार्य उपाध्याय का माना गया है। इसलिए उपाध्याय को—उपाध्यायः सूत्र ज्ञाता (सूत्र वाचना प्रदाता)[२६] के रूप में माना गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका तात्पर्य यह है कि सूत्रों के पाठोच्चारण की शुद्धता, स्पष्टता, विशदता, अपरिवर्त्यता तथा स्थिरता बनाये रखने की सब जिम्मेदारी उपाध्याय के हाथों में है। आज की भाषा में उपाध्याय एक भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि से आगम पाठों की शुद्धता तथा उनके परम्परागत रहस्यों के वेत्ता के प्रतीक है।

लेखनक्रम अस्तित्व में आने से पहले, जैन, बौद्ध एवं वैदिक परम्पराओं में अपने आगम कंठस्थ रखने की परम्परा थी। मूल पाठ का रूप अक्षुण्ण बना रहे, परिवर्तन, समय का उस पर प्रभाव न पड़े, उनके पाठक्रम और उच्चारण आदि में अन्तर न आए इसके लिए बड़ी सतर्कता बरती जाती थी। शुद्ध पाठ यदि उच्चारण में अशुद्ध कर दिया जाए तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है। एक अक्षर का, एक अनुस्वार भी यदि आगे-पीछे हो जाए तो उसमें समस्त अर्थ का विपर्यय हो जाता है। कहा जाता है—सम्राट अशोक ने अपने पुत्र कुणाल को जो तक्षशिला में था, एक पत्र में सन्देश भेजा—"अधीयतां कुमारः" पुत्र ! पढ़ते रहो। किन्तु कुमार कुणाल की विमाता तिष्यरक्षिता ने उसे अपनी आँखों के काजल से 'अधीयतां' के ऊपर अनुस्वार लगाकर 'अंधीयतां' कर दिया। जिसका अर्थ हुआ अंधा कर दो। एक अनुस्वार के फर्क से कितना भयंकर अनर्थ हो गया। शब्दों को आगे-पीछे करके पढ़ने से भी अनर्थ हो जाते हैं। एक मारवाड़ी भाई पाठ कर रहा था—"स्वाम सुधर्मा रे, जनम-मरण से वकरा काटै।" इसमें "सेवक" 'रा' शब्द है जिसका उच्चारण करते हुए "से बकरा" करके अनर्थ कर डाला।

अनुयोगद्वार सूत्र में उच्चारण के १४ दोष बताते हुए उनसे आगम पाठ की रक्षा करने की सूचना दी गई है।[२७] जिसमें हीनाक्षर, व्यत्याम्रेडित आदि की चर्चा है। इन दोषों से आगम पाठ को बचाए रखकर उसे शुद्ध, स्थिर और मूल रूप में बनाये रखने का कार्य उपाध्याय का है। इस दृष्टि से उपाध्याय संघ रूप नन्दन-वन के ज्ञान रूप वृक्षों की शुद्धता, निर्दोषता और विकास की ओर सदा सचेष्ट रहने वाला एक कुशल माली है। उद्यान पालक है।

उक्त विवेचन से हम यह जान पायेंगे कि जैन परम्परा में उपाध्याय का कितना गौरवपूर्ण स्थान है और उनकी कितनी आवश्यकता है। ज्ञान दीप को संघ में प्रज्वलित रखकर श्रुत परम्पराओं को आगे से आगे बढ़ाते रखने का सम्पूर्ण कार्य उपाध्याय करते हैं। यह सम्भव है कि वर्तमान में आगम कथित सम्पूर्ण गुणों से युक्त उपाध्याय का मिलना कठिन है, किन्तु जो भी विद्वान-विवेकी श्रमण स्वयं श्रुत ज्ञान प्राप्त कर अन्य श्रमणों को ज्ञान-दान करते हैं, वे भी उपाध्याय पद की उस गरिमा के कुछ न कुछ हकदार तो हैं ही। वे उस सम्पूर्ण स्वरूप को प्राप्त करने के इच्छुक भी हैं। अतः ऐसे ज्ञानदीप उपाध्याय के चरणों में भक्तिपूर्वक वन्दन करता हुआ—'आचार्य अमितगति' के इस श्लोक के साथ लेख को सम्पूर्ण करता हूँ।

येषां, तपः श्रीरनघा शरीरे,
विवेचका चेतसि तत्त्वबुद्धिः।
सरस्वती तिष्ठति वक्त्रपद्मे,
पुनन्तु ते ऽध्यापक पुंगवा वः॥[२८]

—जिनकी निर्मल तपः श्री शरीर पर दीप्त हो रही है। जिनकी विवेचनाशील तत्त्व बुद्धि चित्त में सदा स्फुरित रहती है। जिनके मुखकमल पर सरस्वती विराजमान है, वे उपाध्याय पुंगव (अध्यापक) मेरे मन-वचन को पवित्र करें।

---

१ सूत्र कृतांग ६
२ भगवती
३ सूत्र कृतांग
४ पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पगासंता।
आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति।—आवश्यक निर्युक्ति ९९४।
५ भगवती सूत्र १. १. १. मंगलाचरण में आ० नि० ९९७ की गाथा।
६ आव. नि० हरि वृ. पृ. ४४९।
७ अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग २, पृ० ८८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ व्यवहार सूत्र ३।३, ७।१६, १०।२६
९ जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, भाग ६, पृ० २१५
१० चारित्र-प्रकाश, पृ० ११५
११ प्रवचन सारोद्धार द्वार ६८, गाथा ५६६
१२ दशाश्रुत स्कंध ७। भगवती २।१ समवायांग १२
१३ उत्तराध्ययन २६।२६ से ३० प्रतिलेखना के २५ भेद अन्य प्रकार से भी हैं। नव अखोड़ा, नव पखोड़ा, ६ पुरिम, १ पडिलेहणा—देखें जैन तत्त्व प्रकाश, प्रकरण ३।
१४ स्थानांग १०
१५ समवायांग १७
१६ भगवती २५।७
१७ उत्तराध्यन १६
१८ उत्तराध्यन ३०।८
१९ प्रवचन सारोद्धार १४८, गाथा ९३४
२० स्थानांग ४
२१ निमित्त के छः व आठ भेद। —स्थानांग ६ तथा ८ में देखें।
२२ काव्य के चार भेद स्थानांग ४ में देखें।
२३ स्थानांग सूत्र ५।२, सूत्र ४३८
२४ स्थानांग सूत्र ७, सूत्र ५४४
२५ दशाश्रुत स्कन्ध चोथीदशा
२६ स्थानांग सूत्र ३।४।३२३ की वृत्ति
२७ अनुयोगद्वार सूत्र १९
२८ अमितगति श्रावकाचार १-४

□□

सुह-दुक्खसहियं, कम्मखेत्तं कसन्ति जे जम्हा।
कलुसंति जं च जीवं, तेण कसाय त्ति वुच्चंति ॥

—प्रज्ञापनापद १३, टीका

सुख-दुःख के फलयोग्य—ऐसे कर्मक्षेत्र का जो कर्षण करता है, और जो जीव को कलुषित करता है, उसे कषाय कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org